Research Vishwa
An Peered-Reviewed and Referred National Journal for Multidisciplinary Studies
ISSN- XXXX-XXXX
VOL.1 ISSUE :2026

हिन्दी साहित्य में नारी चित्रण

प्रो. डॉ. विद्या शशिशेखर शिंदे
आय.सी.एस. कॉलेज, खेड, रत्नागिरी
हिन्दी विभाग प्रमुख

मोबा. 9421186776

हिन्दी साहित्य का आरंभ सामान्यतः दसवीं शताब्दी से आरंभ होता है। हिन्दी साहित्य को क्रमशः वीरगाथाकाल या आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल की विभिन्न धाराओं में विभक्त किया गया है। सन् 1960 के पश्चात् नारी-पात्रों में दिखाई देनेवाले मानसिक द्वंद्वों तथा संघर्षों के कारण-मीमांसा करने के लिए हमें हिंदी साहित्य के आरंभ में छिपे हुए नारी पात्रों की करुण गाथा व्यक्त करना अनिवार्य है। साहित्य में धीरे-धीरे नारी जीवन में किस तरह बदलाव आया उसका वर्णन देखना भी महत्वपूर्ण है।

1. <u>वीरगाथा काल</u> -

हिन्दी साहित्य का आरंभिक काल वीरगाथा काल या आदिकाल है। यह युग भारतीय इतिहास में अव्यवस्था, विशृंखलता, गृहकलह और पराजय का युग है। ऐसे वातावरण में यदि एक कवि आध्यात्मिक जीवन की बातें कर रहा था, तो दूसरा जीवन का रस नारी के साथ भोगना चाहता था। तीसरा कवि तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था। राजाओं की प्रशंसा करके राजकवि की उपाधि प्राप्त करने की चाहत मन में रखी जा रही थी। प्रेम और युद्धों का प्रशंसापरक वर्णन करना इस काल के कवियों के प्रमुख विषय थे। नारी ही प्रेम और युद्ध के मूल में थी। नारी के लिए राजाओं में आपसी युद्ध होते थे। महाराज पृथ्वीराज और जयचंद का आपसी युद्ध का कारण संयोगिता नामक नारी थी। आचार्य डॉ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार — "नारी भोग्या रूप में निजी सम्पाति बनकर रह गई, उसके आंतरिक सौंदर्य, शील और सद्गुण समाप्त हो गये थे। कामिनी में सर्वत्र काम ही परिलक्षित होने लगा।" 1.

राजाओं का अधिकांश समय अन्तःपुर में अपनी पत्नियों, उपपत्नियों, तथा रखैलियों के साथ भोगविलास में बीतता था। इस काल में नारी को केवल भोग और विलास की सामग्री-मात्र समझा गया। बीसलदेव रासो काव्यग्रंथ की नायिका का करुण क्रन्दन इस तरह सुनायी देता था ।

"अजहूँ न जन्म कोई दीहड़ महेस।
अवर जन्म धावई घाण रे नरेश।।" 2

वीरगाथा काल के साहित्य में स्वयंवर तथा अपहरण के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' ग्रंथ में बहुविवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं। राजा उस समय अनेक स्त्रियों के साथ विवाह करते थे। सती प्रथा भी इस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी। 'रासो' में सती प्रथा का सर्वप्रथम उल्लेख अजमेर नरेश बीसलदेव की मृत्यु होने पर प्रमारिनी रानी के सती होने पर किया है।" 3. इस तरह इस काल में स्त्री को भोगवादी वस्तु मानकर उसका पुरुष द्वारा उपभोग किया गया। सती प्रथा जैसी अमानवीय कृत्य स्त्री के साथ परंपरागत पद्धति से चल रही थी।

इस काल में जैन साहित्य में नारी अपहरण संबंधी उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस युग में नारी अस्तित्व पर गहन प्रश्न निर्माण करने वाले अनेक 'रासो' ग्रंथों का निर्माण हुआ। श्रावकाचार, भरतेश्वर-बाहुबली रास, चन्दनबालारास, स्थूलिभद्ररास, रेवतगिरिरास आदि प्रमुख ग्रंथ के नाम महत्वपूर्ण हैं। आसगु कवि कृत 'चन्दनबालारास' में अपहरण एवं सती प्रथा का उदाहरण प्राप्त होता है। चंदनबाला का अपहरण इस काव्य की मुख्य घटना मानी जाती है। वह अपने अंत तक सतीत्व पर अटल रहकर दुःख सहती रही और अन्त में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई है।

आदिकाल में लौकिक साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है। लौकिक साहित्य का प्रधान विषय 'शृंगार' ही रहा है। 'ढोला-मारु रा दूहा' की नायिका मारवणी का बाल-विवाह हुआ था। अमीर खुसरो नारी के यौवन के आकर्षण से सर्वथा पृथक न रह सके। विद्यापति की पदावली में प्रेम, यौवन, सौंदर्य मिलन तथा प्रेमवेगों के ऐसे सैकड़ों चित्र बिखरे पड़े हैं जो इस बात की स्पष्ट गवाही देते हैं कि इस महाकवि ने जीवन में नारी को भोग के धरातल पर उतारकर परखा और भोगा था—

"मुकुर लेइ अब करत सिंगार,

हसइत अपन पयोधर हेरि।"

यह वर्णन पढ़कर स्पष्ट होता है कि निश्चय ही महाकवि ने दरबारी परिवेश में रहकर नारी के यौवन-सौंदर्य का उन्मुक्त भोग किया था और उसकी अनुभूतियों को शब्दों में बाँधा था।

स्पष्ट है कि वीरगाथा युग में नर-नारी के पारस्परिक संबंध भोगपरक रूपों से आगे बढ़ न सके। नारी वीरता का पुरस्कार तो बनी, किन्तु उसकी मानवीय भावनाएं कुचल दी गयीं। वीरगाथा काल की स्त्री भोगगामी रही या सौंदर्य की शोभा तक ही सीमित रह गयी।

भक्तिकाल —

16 वीं शताब्दी के मध्य में जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तब यहाँ सभी स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य थे। शेरशाह सूरी के काल में हिन्दी का अमर काव्य 'पद्मावत' लिखा गया। दिल्ली सम्राट अकबर के सामने देश के छोटे-छोटे हिन्दू और मुसलमान राजाओं ने एक-एक करके घुटने टेक दिए। सम्राट अकबर ने राजपूतों को राजकोष सम्मान देकर उनकी बेटियों तथा बहनों को जबरदस्ती अपनी बेगम बनाया। कनक और कामिनी के विरोध में सन्त कवियों ने अपनी वाणी में प्रखरता उत्पन्न की। यह तत्कालीन समाज की विलासिता की ओर भी संकेत करती है। उस समय के विलासी मुगल अधिकारियों की सस्ती रसिकता से रक्षा पाने के लिए हिंदू समाज में पर्दे और बाल विवाह का प्रचलन आरंभ हुआ। लेकिन भक्तिकाल के संतों ने जातपाँत के भेदभाव का खुलकर विरोध किया है। परिणामतः भक्तिकाल की - सभी धाराओं के अंतर्गत नारी का सौंदर्य आदर्श, उदात्त एवं सामान्य दोनों रूपों में हमारे समक्ष आता है। उस काल की परिस्थिति के अनुरूप संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके अनुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं। कबीर का कहना है –

"नारी की झांईं परत अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कहा गति जिन नारी के संग ।" 5

अचरज का विषय है कि जहां एक ओर इन्होंने नारी की इतनी निंदा की है, वहीं दूसरी ओर सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। कबीर का कहना है कि –

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर वारों कोटि सरूप।" 6

मध्यकालीन साहित्य का महत्वपूर्ण मेरुदण्ड प्रेम पीर के प्रसारक सूफी संत कवि जायसी हैं। उन्होंने नारी को परमात्मा का प्रतीक मानकर यह कह दिया कि,

"नारी एक ऐसा नूर है,
जिसके बिना विश्व सूना है।" 7

सूफी कवियों ने नारी को अपनी प्रेम साधना के साध्य के रूप में स्वीकार किया है। जिसके कारण वह इनके लिए प्रेम के लौकिक जीवन की निरा भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती। विषय वासना में लिप्त तत्कालीन मानव को प्रेममार्ग में एकनिष्ठ पथिक बनाने का उपदेश सूफियों की रचनाओं में प्राप्त होता है। यही कारण है कि जायसी ने तत्कालीन युग की

विभीषिका में प्रतिष्ठित 'भोग्या' को अपने 'पद्मावत' में पद्मावती को ईश्वर तुल्य मानकर उसे प्रेम की अलौकिक मूर्ति में स्थापित किया।

तुलसी कृत 'रामचरितमानस' वस्तुतः नारी के आदर्शों का महाकाव्य माना गया है। इस काव्य का मुख्य उद्देश्य रामराज्य के आदर्श के साथ नारी के चरित्र को ऊँचा उठाना यह भी था। इस काव्य में नारी के विविध रूप पत्नी, माता, प्रेयसी आदि का आदर्शनीय वर्णन किया है। कौशल्या मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आदर्श माता तो थी ही, सुमित्रा को भी तुलसीदास ने आदर्श माता सिद्ध किया। मानस की सीता भी आगे चलकर आदर्श माता बनती है। शबरी जैसी जंगल में रहने वाली स्त्री भी गरीब होकर भी आदर्श भक्त के रूप में व्यक्त होती है। सूरदास की यशोदा में तो आदर्श माता की संपूर्ण कल्पना साकार हो उठी है। पुत्र की कल्याण कामना में लीन होकर, स्वंय को 'धन्य माँ' कहकर समाधान मानने वाली यशोदा पूरे विश्व संस्कृति का प्रथम माता के रूप को व्यक्त करती है।

स्पष्ट है कि पद्मावती, सीता, राधा, यशोदा, कौशल्या, सुमित्रा आदि के माध्यम से भक्तिकाल में नारी का सत् रूप प्रतिष्ठित करना युगीन कवियों का संकल्प था। नारी महिमा का गौरव जितना भक्तिकाल में हुआ उतना अन्य काल में न हो सका। 'स्वर्णयुग' की घोषणा में नारी के अस्तित्व का गौरव गान महत्वपूर्ण है।

(6) रीतिकाल —

मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सामने देशी राजाओं का तेज फीका पड़ गया था। मुगल दरबार के प्रचुर विलासिता का अनुकरण करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था। दरबारी कवि नारी के कूच-कटाक्ष के महीन से महीन विलासात्मक रंगीले और भड़कीले चित्र उतारकर स्वामी के शारीरिक विवाद को दूर करने में प्रयत्नशील थे। उनके सामने नारी का एक ही रूप था वह था विलासिनी नायिका का। नारी उनके लिए एकमात्र भोगविलास का उपकरण मात्र थी। इनके काव्य की नायिका होने के लिए स्त्री का सुंदर होना पहली शर्त थी। इसीलिए कवि कहते हैं —

'मानो रची छबि मूरति मोहिनी,
श्रीधर ऐसी बखानत नायिका।' 8.

इससे इतना स्पष्ट है कि नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कुछ नहीं है, यह केवल पुरुषों के आकर्षण का केंद्र मात्र है। नारी जीवन के प्रति रीति कवि के इस संकुचित दृष्टिकोण का दायित्व एक तो उस समय के वातावरण पर है और दूसरा कामशास्त्रीय ग्रंथों के प्रभाव के कारण हुआ है। नारी के अनेक रूप गृहिणी, जननी, देवी, भगिनी इत्यादि पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ी। वे नारी शरीर के सौंदर्य सरोवर में सतह पर ही गोते खाते रह गये। उनकी दृष्टि आत्मा की अंतर्तम गहराई तक पहुँच न सकी। रीतिकाल के कवि बिना देखे नारी के सौंदर्य

का वर्णन करते हुए उसके अंग, प्रत्यंग की शोभा, हाव-भाव और विलास-चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इसके पीछे राजाओं का मनोरंजन करना यह एकमात्र उद्देश्य काव्य के साथ बंधा रहा। ऐसा लगता है मानो वासना ही कवि के जीवन का सबकुछ बन गया था। उस काल की परिस्थिति वश उन्हें यह करना पड़ा!

मध्य काल की संत कवयित्री मीराबाई

जब भक्तिकाल के लगभग सभी संत स्त्री विरोधी समाज की परिकल्पना का पक्ष-पोषक बने हुए थे, उस समय मीरा बाई जैसी स्त्री संत ने नारी चेतना तथा नारी मुक्ति का बिगुल बजाकर समाज में क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया। मीराबाई के विषय में एक विद्वान कहते हैं, "मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्वर को मुखर अभिव्यक्ति मिली है। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी है।" मीराबाई भक्तिकाल की सशक्त नारी मानी गयी है। वैसे मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। फिर मीरा राजकुल की वधू थी और विधवा भी थी। फिर भी सभी प्रकार की बाधाओं को पार करके मीरा एक महान भक्त की श्रेणी में पहुँच गयी। मध्ययुगीन समाज की स्त्री के लिए उड़ान भरने योग्य अनंत आकाश नहीं था बस काल के समाज का पूरा ढाँचा पितृसत्तात्मक था, मीराबाई ने पहली बार इस बंधन को तोड़ना चाहा है —

"माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बाँध पग घूँघरू,
लोकलाज तज नाची।"

मीरा ने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया। उस काल में राजकुल की स्त्रियों के लिए सती होने की प्रथा थी। लेकिन मीरा विधवा होने के बाद सती नहीं गयी। वह लगातार अपने और समाज के द्वारा लगातार लांछन, अपमान और यातनाएँ सहती हुई कृष्ण भक्त बनी रही। उन्होंने निर्भय होकर भ्रामक युगधर्म और लोकभय का सामना करते हुए स्पष्ट कहा —

'भजन करणां न होस्यां मन मोह्यों थारां नामी।'

मीरा का जीवन और काव्य उस काल के अन्य भक्त कवियों की स्त्री संबंधी मान्यताओं का प्रतिवाद है और प्रत्युत्तर भी है। मीरा का व्यक्तित्व अपने समय का सबसे क्रांतिकारी स्त्री व्यक्तित्व था। यह संपूर्ण स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति की बात करती है। राणा द्वारा विष का प्याला भेजे जाने पर वह कहती है —

'राणा जी मोहे बदनामी लागे मीठी।
कोई निंदो, कोई बिंदो, मैं चलूँगी चाल अनूठी।'

मीराबाई को लंबी आयु प्राप्त नहीं हुई मगर जितने दिन तक वह रही एक शीतल ज्वाला की तरह जलती-धधकती रही। मीरा ने नारी के ऊपर होने वाले अन्याय को व्यक्त किया, उसे वाणी दी और उसके माध्यम से पुरुष वर्चस्व वाले समाज में नारी के प्रति बरती जाने वाली उस अमानवीयता को उजागर कर दिया। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही वह सामाजिक भी है। आज की वर्तमान स्त्रियों के लिए मीरा प्रेरणास्रोत है।

छायावाद में नारी चितरण -

नारी की स्वाधीनता को छायावादी कवियों ने विशेष महत्त्व दिया। नारी को मानवीय रूप में सर्वप्रथम छायावादी काव्य में प्रतिष्ठा मिली। इसके पूर्ववर्ती काव्य में नारी संबंधी रचनाएँ लिखी गयीं लेकिन वह रचनाएँ पुरुष प्रधानता को ही व्यक्त कर रही थीं। छायावादी कवियों ने स्त्री विषयक संकुचित मान्यताओं का विरोध करते हुए उसके प्रेयसी रूप को ही नहीं बल्कि पत्नी, जननी, सहचरी आदि रूपों के आदर्श व्यक्त किए। नारी की स्वाधीनता पर चर्चा करते हुए निराला जी लिखते हैं — "महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन को विकास करेगी। हमें सिर्फ अपनी महिलाओं की स्वतंत्रता का स्वरूप बदलना है और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रुक नहीं सकता, यह वह अब तक कह चुका है। चूँकि पुरुष निराधार स्त्रियों की उपेक्षा करने में इस देश में अधिक समर्थ है इसीलिए हम स्त्री स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद के लिए कहते हैं क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित, पराधीन माता से तेजस्वी स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकतीं, जिनसे राष्ट्र का सर्वांश गर्व हो जाता है।"

महादेवी वर्मा जी नारी स्वाधीनता को अपने काव्य में स्वर दिया वह कहती हैं कि -

"मैं हैरान हूँ यह सोचकर
किसी औरत ने क्यों नहीं उठाई उँगली?
तुलसीदास पर जिसने कहा,
ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, यह सब ताड़न के अधिकारी।"

महादेवी वर्मा ने अपने जीवन को स्वतंत्रतापूर्वक जीने का संकल्प बार-बार दोहराया है। उन्होंने समाज के परंपरागत नारी विषयक दृष्टिकोण, बंधन, सौंदर्य के मानदंडों और झूठे नैतिक मूल्यों का उन्होंने विरोध किया है। सहज मानवीय संबंधों की दृढ़ता को उजागर करते हुए निराला जी कहते हैं कि,

"दोनों हम भिन्न वर्ण!भिन्न जाति, भिन्न रूप!
भिन्न धर्म भाव परकेवल अपनाव से प्राणों का एक ही।"

सारांश में कहा जा सकता है कि नारी स्वाधीनता के स्वर जिस प्रमुखता से स्थान पाए वह राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव था।

आधुनिक काल

सन् १९०० के पश्चात् आधुनिक काल के साहित्य में नारी पात्रों के अस्तित्व के प्रति संघर्ष भावना निर्माण होने लगी थी। भारतेन्दु और द्विवेदी काल के साहित्यकारों ने स्त्री विषयक समस्याओं सबके सामने लाकर उसमें परिवर्तन की आकांक्षा व्यक्त की। इस काल के समाज सुधारक स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, सती प्रथा को बंद करना, बाल-विवाह के खिलाफ आंदोलन कर रहे थे। उसी के परिणामस्वरूप साहित्य में भी इन बातों पर चर्चा होने लगी। उस समय लिखे गए पद्य और गद्य काव्य में अनेक आदर्श नारी चरित्र से संबंधित अनेक आदर्श प्रस्थापित होने लगे। भारतेन्दु काल के आरंभिक तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों में नारी का स्थान गौण ही रहा था। इसमें नारी के दो रूप दृष्टिगत होते हैं एक तो देवी या फिर दानवी। इस काल में कुछ उपन्यासकारों ने नारी पात्रों में भी देशभक्ति की भावना का संचार करने का प्रयास किया। इसलिए अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। किशोरी लाल गोस्वामी 'तारा', रामनरेश त्रिपाठी कृत 'वीरांगना' प्रसिद्ध है। पौराणिक उपन्यासों में नारी के आदर्श का वर्णन किया गया है। उनका मुख्य उद्देश्य नारी को सद् मार्ग की ओर प्रवृत्त करना था। लक्ष्मी दत्त शर्मा कृत 'सावित्री सत्यवान' 'नल दमयंती' यह श्रेष्ठ उपन्यास है। सामाजिक उपन्यासों में लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षागुरू' नारी की वेश्या समस्या को प्रकाशित करनेवाला हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। १९ वीं शताब्दी के पूर्व विभिन्न समस्याओं का शिकार बनी हुई नारी को सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में सहयोग दिलाना तत्कालीन साहित्यकारों की अनिवार्यता थी।

सच्चे रूप में स्त्री की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास प्रेमचंद युग गद्य के क्षेत्र में और काव्य के क्षेत्र में छायावाद के कवियों ने किया। इस काल के व्यक्तित्व के माध्यम से स्त्री का मानसिक विद्रोह भाव स्पष्ट होने लगा। प्रेमचंद जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' की सरोज जो स्त्रियों की स्वतंत्रता सिद्ध करना चाहती है। जयशंकर प्रसाद अपने कथा साहित्य के माध्यम से नारी का उत्थान करते हैं। तत्कालीन रीतियों के प्रति नारी को सचेत कराना उनकी कहानियों की बड़ी विशेषता थी। "ममता" कहानी में मंत्री चूड़ामणि की पुत्री ममता को उपस्थित कर प्रसाद जी ने मानो विधवा विवाह का समर्थन किया था।" अज्ञेय, जैनेंद्र, जोशी आदि की कहानियों में नारी के बेटी, पत्नी प्रेमिका, माँ, विधवा, वेश्या रूपों के आंतरिक पक्ष का ही अधिक उद्घाटन हुआ है। यही कारण है कि 'त्यागपत्र' की मृणाल, सुनीता को सुनीता, इलाचंद्र जोशी कृत 'प्रेत और छाया' की 'मंजरी', 'सन्यासी' की शांति आदि किसी

अन्य पुरुष के साथ रहते हुए भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा करती है। यह विचारधारा शरीर से अधिक आत्मा की पवित्रता पर विश्वास करती है।

नारी की स्वाधीनता को छायावादी कवियों ने विशेष महत्व दिया है। नारी को मानवी रूप में सर्वप्रथम छायावादी काव्य में प्रतिष्ठा मिली। छायावादी कवियों ने स्त्री विषयक संकुचित मान्यताओं का विरोध करते हुए उसके प्रेयसी को ही नहीं बल्कि पत्नी, जननी, सहचरी आदि रूपों के आदर्श व्यक्त किए। नारी की स्वाधीनता पर चर्चा करते हुए निराला जी लिखते हैं—

"महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ अपनी महिलाओं की स्वतंत्रता का स्वरूप बदलना है और यह भी सत्य है कि पुरुषों का निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास नहीं हो सकता, न वह अब तक कहीं रुका है। चूंकि चूंकि पुरुष निशाचर स्त्रियों की उपेक्षा करने में इस देश में अधिक समर्थ है इसलिए हम स्त्री स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद के लिए कहते हैं क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित, पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकतीं, जिससे राष्ट्र का सर्वस्व जर्जर हो जाता है।" ०९

महादेवी वर्मा ने नारी स्वाधीनता को अपने काव्य में प्रबल स्वर देकर कठोर प्रश्न पूछती हैं —

"मैं हैरान हूँ यह सोचकर
किसी औरत ने क्यों नहीं उठाई उंगली?
तुलसी दास पर जिसने कहा,
ढोल, गवाँर, शूद्र, पशु, नारीयह सब ताड़न के अधिकारी।" १०

महादेवी वर्मा ने अपने जीवन को स्वतंत्रता पूर्वक जीने का संकल्प बार-बार दोहराया है। उन्होंने समाज के परंपरागत नारी विषयक दृष्टिकोण, बंधन नम्र सौंदर्य के मानदंड और झूठे नैतिक मूल्यों का उन्होंने विरोध किया है। सहज मानवीय संबंधों की दृढ़ता को उजागर करते हुए निराला कहते हैं कि,

"दोनों हम भिन्न वर्ण।
भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्मभाव पर
केवल अपनाव के प्राणों से एक थे।" ११

सन् १९६० के पश्चात् कथा जगत में अनेक महिला कथाकारों ने अपने साहपूर्ण, मौलिक चिंतन के साथ जीवन की विषमताओं को अपनी दृष्टि से विश्लेषित किया।

समकालीन कथा लेखिकाओं में मन्नू भंडारी जी ने नारी जीवन की समस्याओं को लेकर गम्भीर, परिवर्तनवादी रचनाओं का निर्माण किया। 'आपका बंटी' आधुनिक सुशिक्षित पति-पत्नी के अहम् का टकराव तथा तनाव से उत्पन्न परिस्थितियों का चित्रण करता है। विधवा नारी की सामाजिक असुरक्षितता का दृष्टांत हमें 'रानी माँ का चबूतरा' की गुलानी के द्वारा ज्ञात होता है। इनके साहित्य की नायिकाएँ अपनी किसी न किसी समस्याओं को लेकर पुरुष व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती हुई दिखायी देती है। इसके अलावा शिवानी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, रजनी पणिक्कर, अमृता प्रीतम, राजी सेठ, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, मैत्रेयी पुष्पा, शशिप्रभा शास्त्री, प्रभा खेतान, सूर्यबाला, कृष्णा अग्निहोत्री, आदि महिला कथाकारों ने भोगे हुए सच को व्यक्त किया है। तस्लीमा नसरीन के अनुसार — 'नारी शिक्षा ने तत्कालिक तौर पर नारियों को पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने लायक योग्यता जरूर बख्शी पर इससे उनकी प्रताड़ना और मनोबल गिराने की साजिशों ने जहाँ एक ओर उसे आत्मविश्वास से हीन किया, वही दूसरी ओर उसकी घुटन को और भी ज्यादा बढ़ाया।' 12

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री लेखन का स्वर काफी मजबूती से उभरा है। स्त्री रचनाकारों ने अपनी पीड़ा, अनुभव और आकांक्षा को बखूबी उकेरा है। स्त्री मुक्ति के इस दौर में लिखी जा रही कविताओं का मुख्य स्वर गुलामी की अनुभूतियों से सजग होकर मुक्ति की जरूरत अनुभव करती है। निर्मला पुतुल ने लिखा है कि —

"मैं कविता नहीं,
शब्दों में खुद को रचती देखती हूँ,
अपनी काया से,
बाहर खड़ी होकर अपना होना।" 13

इस तरह हिन्दी साहित्य के आरम्भकाल से लेकर समकालीन साहित्य में स्त्री विमर्श को समृद्ध कर रही है। इस साहित्य के माध्यम से हमारी सामाजिक व्यवस्था ने हमेशा स्त्री को घर की चारदीवारी में रखकर दूसरों के लिए त्याग की मूर्ति बना दिया और उसे स्वयं के बारे में सोचने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया। लेकिन हिन्दी साहित्य के माध्यम से यह बताया गया है कि स्त्री में अनोखी शक्ति है यदि उसको समाज में स्वतंत्र कर दिया जाएगा तो वह अपने काबिलियत के बल पर सबको अधीन कर लेगी। स्त्री कोई वस्तु नहीं है जिसे कहीं पर भी रख दिया जाएगा। उसका अस्तित्व व्यक्त करने का महान प्रयास हिन्दी साहित्य में अनवरत चल रहा है वह आगे भी चलेगा यह मेरा विश्वास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल - पृष्ठ 357
2. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा - पृष्ठ 237
3. श्रेष्ठ प्राचीन हिंदी कवि - सुरेश अग्रवाल - पृष्ठ 32
4. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा - पृष्ठ 40
5. वही - पृष्ठ 45
6. वही - पृष्ठ 48
7. वही - पृष्ठ 41
8. मीराबाई की संपूर्ण पदावली - परशुराम चतुर्वेदी - पृष्ठ 66
9. वही - पृष्ठ 107
10. वही - पृष्ठ 110
11. अनामिका - निराला - पृष्ठ 45
12. यामा - महादेवी वर्मा - पृष्ठ 35
13. कुकुरमुत्ता - निराला - पृष्ठ 22
14. मेरे एकांत का प्रवेश द्वार - निर्मला पुतुल - पृष्ठ 45